अष्टम अध्याय

नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा

8.1 धर्म का अर्थ :

राधाकृष्णन ने 'धर्म' शब्द के अत्यन्त गूढ़ और रहस्यमय अर्थ को समझा और विभिन्न धर्मों का गहन और गम्भीर अध्ययन करने में इस शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया । उन्होंने धर्म के अर्थ को स्पष्ट करते हुये आधुनिक सन्दर्भों में इसकी अत्यन्त विशद व्याख्या की । उनके अनुसार धर्म 'मानव धर्म ' है जो एक है, विश्वव्यापी है और सार्वभौमिक है । विभिन्न धर्म एक ही आधार पर स्थित हैं, जिनका स्रोत एक शाश्वत्, नित्य और असीम सत्ता है । राधाकृष्णन ने धर्म की व्याख्या मानवीय उपयोगिता, मानववादी दृष्टिकोण और आध्यात्मिक तत्व का सम्मिश्रण करते हुये की है । उनकी धर्म की व्याख्या में इन तीनों का पूर्णतः समावेश है ।

राधाकृष्णन के अनुसार धर्म का सीधा सम्बन्ध परम सत्ता तथा रहस्यात्मक वस्तुओं में अन्तर्दृष्टि से है । यह ईश्वर का अनुभव अथवा उसमें संस्पर्श है । वे कहते हैं कि धर्म केवल परम सत्ता की प्राप्ति है । मनुष्यों को छोटे से छोटे कार्य करते हुये यह अनुभव

रहता है कि ईश्वर का अस्तित्व है ।'[1] राधाकृष्णन का मत है कि ' धर्म एक आभ्यन्तर और व्यक्तिगत चीज है जो सब मूल्यों का एकीकरण और सब अनुभवों का संगठन करती है । यह समग्र यथार्थ सत्ता के प्रति समग्र मानव की प्रतिक्रिया है ।[2]

राधाकृष्णन ने धार्मिक और आध्यात्मिक शब्दों में अन्तर किया है । उनके अनुसार आध्यात्मिकता किसी भी धार्मिक मनुष्य का अन्तिम ध्येय है । आध्यात्मिकता की प्राप्ति के बाद इसमें मनुष्य का समस्त विश्वास, नैतिक आचरण और दृष्टिकोण सम्मिलित है । राधाकृष्णन ने धर्म का ध्येय आध्यात्मिक माना है । वे कहते हैं, ' धर्म का ध्येय आध्यात्मिक है और केवल तात्विक विचार अन्तर्मुखी आयाम में लीन हो जाती है ।[3] उनके अनुसार ' हम धार्मिक विषय (वस्तु) को अपनी समग्र मनःराशियों और ऊर्जाओं में खोजते हैं । समग्र मानव की यह क्रिया आध्यात्मिक जीवन कही जा सकती है जो मात्र बौद्धिक या नैतिक या सौन्दर्य बोधात्मक क्रिया या उन सबके सम्मिश्रण से एक सर्वथा भिन्नक्रिया है । आध्यात्मिक अनुभूति वास्तविक सत्ता को पाने की नैसर्गिक वृत्ति तब तक सन्तुष्ट नहीं होती, जब तक कि उसे पूर्ण और नित्य की प्राप्ति न हो जाये । अनित्य की अनित्यता और क्षणिक की क्षणिकता के प्रति उसमें पुनिर्वाह

1- एस0राधाकृष्णनः'ओकेज़नल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स', खण्ड तृतीय, पब्लिशड बाय दी मिनस्टरी आफ इन्फोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 178

2- एस0राधाकृष्णनः 'एन आडिटलिस्टिक व्यू ऑफ लाईफ ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 88

3- एस0 राधाकृष्णनः 'रीकवरी ऑफ फेथ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 158

असन्तोष है । इस प्रकार के अखण्ड और अविकल अन्तर्ज्ञानी ही धर्म के लिये हमारे आप्त प्रमाण है ।[1]

राधाकृष्णन के मतानुसार धर्म ही वह साधन है जिसके द्वारा हम आध्यात्मिकता को प्राप्त करते हैं । उन्होंने आध्यात्मिक जीवन और अन्तः दृष्टि प्राप्त करने की अति महत्वपूर्ण आवश्यकता पर बल दिया है । राधाकृष्णन की मान्यता थी कि जिस जटिल विश्व में हम रह रहे हैं वहाँ आध्यात्मिकता प्राप्त करने की आवश्यकता और भी अधिक है । उनके शब्दों में, ' जब तक हम आधुनिक विश्व में वह आध्यात्मिक दृष्टि नहीं प्राप्त कर लेते जो सब जीवात्माओं को ईश्वर में देखती है तथा मनुष्य - मनुष्य में अन्तर नहीं करती । जब तक हममें सामाजिक दृष्टि तथा आध्यात्मिक एकता प्राप्त नहीं होती, जब तक इन दोनों का मिलन नहीं होता, हम भविष्य का सामना नहीं कर सकते ।'[2]

राधाकृष्णन ने धर्म को अंधी आस्था के विरूद्ध स्वीकार किया है । उनके अनुसार धर्म को जादू,टोने और टोटके के रूप में स्वीकार करना अज्ञानता है । धर्म को पलायनवादी कहा गया है किन्तु राधाकृष्णन ने इस आक्षेप को सर्वथा निर्मूल बताते हुये इस पलायनवादी दृष्टिकोण का विरोध किया है । पाश्चात्य विचारकों की इस मान्यता का कि ' धर्म नशा है' का भी

1- एस0राधाकृष्णनः 'एन आइडिनिस्टक व्यू ऑफ लाईफ (हिन्दी अनुवाद),पृष्ठ 88-89

2- एस0राधाकृष्णन : 'ओकेज़नल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स', खण्ड द्वितीय, पब्लिशड बाय दी मिनिस्टरी ऑफ इन्फोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 192

उन्होंने खण्डन किया है ।[1]

राधाकृष्णन इस मान्यता का कि धर्म मस्तिष्क को पुनः अपरिपक्वता में वापस भेज देता है और सक्रिय मस्तिष्क को निष्क्रिय कर अचेतन अवस्था में भेज देता है, का भी विरोध करते हैं ।[2] उनके मतानुसार धर्म सम्प्रदाय का सूचक नहीं है और न ही स्वयं को सुरक्षित रखने के लिये वृद्धि द्वारा किया गया समर्पण है । उन्होंने धर्म के सम्प्रदायवादी स्वरूप का विरोध किया जो विभिन्न सम्प्रदायों में विभाजित है, और हिंसा को जन्म दें ।

राधाकृष्णन के अनुसार सच्चे धर्म का अर्थ है भय पर विजय, विफलता और मृत्यु का प्रतिकार । ज्ञान या विवेक ही वह सत्य है, जो भय को दूर भगाता है । जब तक धर्म स्वयं भय की अभिव्यक्ति बना रहता है, तब तक मानव जीवन विकृत ही होता है । राधाकृष्णन का मत है कि सच्चे धर्म का लक्षण अभय है, जो अपनी अभिव्यक्ति सामञ्जस्य और सन्तुलन के रूप में करता है । जो शरीर और आत्मा तथा श्रम और बुद्धि के मध्य पूर्ण समझौते के रूप में और अंहिंसा या प्रेम के स्वरूप में प्रकट होता है । अभय तथा अहिंसा, ज्ञान एवं सहानुभूति , स्वतंत्रता व प्रेम में युग्य धर्म सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप है । स्वतन्त्र व्यक्ति

1- एस0 राधाकृष्णन : 'रिलीज़न एण्ड सोसायटी', जोर्ज एलन एण्ड अनविन लिमिटेड, लन्दन, 1949, पृष्ठ 69

2- राव, पी0नागराजः 'राधाकृष्णन- दी मैन एण्ड हिज़ मैसेज', बी0एल0 आत्रे, डा0 एस0 राधाकृष्णन सोवेनियर वोलयूम' दर्शन प्रिंटर्स, मुरादाबाद, 1964, पृष्ठ 377

के मन में किसी प्रकार का द्वन्द्व व संघर्ष पैदा नहीं होता । उसे न दुख होता है, न क्रोध आता है और न आक्रोश ही आता है, क्योंकि जो हमारे विरोधी हैं वे भी हमारे भाई हैं, जिनसे हम किसी कारण से अलग हो गये हैं और जिन्हें हम चाहें तो प्रेम और सहानुभूति से जीत सकते हैं ।

राधाकृष्णन ने धर्म के व्यापक स्वरूप की व्याख्या करते हुये धर्म को मानव की विकसित अनुभूति के रूप में स्वीकार किया । उनके मतानुसार 'धर्म व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की प्रतिक्रिया है ।' धर्म वैज्ञानिक है, मानवीय है तथा स्व प्रमाणित अनुभवों पर आधारित है । धर्म सामाजिक, पुनः निमार्ण का सर्वोत्तम उपकरण है । समस्त आस्थाओं के मध्य संगति स्थापित करने का माध्यम है और मानवीय व्यक्तित्व को एकताबद्ध करने में सहायक है । इस प्रकार राधाकृष्णन एक सार्वभौमिक शाश्वत और नित्य धर्म की व्याख्या करते हैं ।

राधाकृष्णन द्वारा दी गई धर्म की व्याख्या को वर्गीकृत कर निम्न रूपों में उसकी विवेचना करने का प्रयास किया गया है -

8.1.1 नैतिकता और आचरण सम्बन्धी धर्म के अर्थ का विवेचन:

राधाकृष्णन ने धर्म और नैतिकता के अभिन्न सम्बन्ध को स्वीकार किया है । उनके अनुसार सामाजिक जीवन में नैतिकता अथवा शुद्ध आचरण धर्म का एक अनिवार्य अंग है । व्यवहारिक जीवन में व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुये आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करता है । वाह्य जगत में धर्म का प्रकाशन कर्तव्य और आचरण के द्वारा होता है । धर्ममय आचरण से अच्छे चरित्र का निमार्ण होता है और अच्छे चरित्र से व्यक्ति लोक कल्याण की

भावना से प्रेरित होता है और अनुशासन तथा उत्तरदायित्व की भावना से अपने कल्याणकारी कार्यों से जगत में सुख शान्ति की स्थापना का प्रयास करता है । राधाकृष्णन ने धर्म को उच्चतम नैतिक मूल्यों की चेतना के रूप में स्वीकार करते हुये कहा है कि 'कोई भी आचारिक सिद्धान्त, जो मानव सिद्धान्त और परम सत्य के सम्बन्ध का दार्शनिक निरूपण करता हो, अध्यात्म शास्त्र में स्थान पाने के योग्य हैं ।'[1] परम सत्ता के प्रति व्यक्ति जैसी भावना रखता है वैसा ही आचरण वह सामान्य जीवन में करता है । नैतिक चेतना के द्वारा ही व्यक्ति आत्मिक उन्नति करता है । भौतिक चेतना और आत्मिक उन्नति दोनो ही भावात्मक सम्बन्धों से जुड़े हुये है । राधाकृष्णन का मत है कि 'यदि सत्य आदर्शों को ही धर्म कहा जाये तो नैतिक मानववाद को कार्यवाहक धर्म कहना होगा ।'[2] आदर्शों की सत्यता में दृढ़ विश्वास रखने के बाद ही नैतिक चेतना पैदा होती है । भौतिक चेतना को जागृत रखते हुये सदाचार के द्वारा व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर होता है । लेकिन राधाकृष्णन धर्म को मात्र नैतिकता के रूप में ही स्वीकार नहीं करते । उन्होंने धर्म को नैतिकता से व्यापक रूप में स्वीकार किया है ।

8.1.2 मानवीय भावमूलक धर्म के अर्थ का विवेचन:

राधाकृष्णन ने धर्म के भावनात्मक सम्बन्ध का विवेचन करते हुये कहा है कि

1- एस0 राधाकृष्णन: 'इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 97

2- वही, पृष्ठ 99

चरम सत्यों के प्रति आत्मा सदैव आकर्षित होती है । चरम सत्यों के प्रति विश्वास और आस्था के जन्म का यही कारण है । उनके अनुसार 'इन्द्रियातीत जगत् के चरम सत्यों के प्रति आत्मा की जो प्रवृत्ति प्रतिक्रिया तथा समन्वयशीलता रहती है, उसी को धर्म कहते हैं ।'[1] आत्मा की प्रवृत्ति चरम सत्यों के प्रति स्वतः परिलक्षित होती है । उसी के अनुरूप आत्मा प्रतिक्रिया करती है और अपने आप को संयमित करती है । चरम सत्य के प्रति आस्था और विश्वास की यह भावना ही धर्म का मूल है ।

उन्नत सत्ता की प्राप्ति के लिये धर्म ही नियामक है और वही समस्वरता की स्थापना करता है । आस्था और विश्वास व्यक्ति के समस्त जीवन को समुन्नत करके परम सत् तक पहुंचने के लिये उपयुक्त मार्ग प्रशस्त करते हैं । व्यक्ति में धर्म एक ऐसी सहज प्रवृत्ति है जो नष्ट नहीं हो सकती । राधाकृष्णन के अनुसार भावना, संवेग और भाव, नैसर्गिक वृत्ति, पूजा और कर्मकाण्ड, प्रत्यक्ष अनुभव और विश्वास इन सबको धर्म कहा जाता रहा है और अपने भावात्मक अर्थ में ये सब विचार ठीक भी है ।[2] धर्म भावना प्रधान है । धर्म व्यक्ति की आन्तरिक और स्वाभाविक प्रेरणा है । धर्म भावनाओं का पुंज है । मनुष्य की भावनाओं की परितुष्टि धर्म में ही होती है । धर्म स्वतः प्रेरित भावना है । राधाकृष्णन के अनुसार ' धर्म

1- एस0 राधाकृष्णनः 'इस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न थॉट'(हिन्दी अनुवाद), उमापतिराय चन्देल, प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 1967, पृष्ठ 99

2- एस0 राधाकृष्णन : ' एन आईडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 107-108

मानव मन की एक स्वतन्त्र क्रिया है जो सर्वथा पृथक और असाधारण है । यह एक आभ्यान्तर और व्यक्तिगत चीज है, जो सब मूल्यों का एकीकरण और सब अनुभवों का संगठन करती है ।'[1] मानव मन सदैव धर्म से अनुप्राणित है । हर मननशील व्यक्ति के जीवन में धर्म का विशिष्ट महत्व है । राधाकृष्णन के अनुसार धर्म अथवा आध्यात्म, गुह्य खोज नहीं है । यह एक स्वाभाविक रूझान है । चिन्तन और अस्तित्व की पूर्ण कल्पनाओं को खोजने के लिये यह मानव मस्तिष्क की एक आध्यात्मिक आवश्यकता है ।'[2] आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा व्यक्ति समस्त अनुभवों को व्यवस्थित कर उसका वास्तविक अर्थ जानने का प्रयत्न करता है और उसी के अनुरूप अपनी जीवन पद्धति को निर्धारित करता है ।

8.1.3 मानवीय ज्ञानपरक धर्म के अर्थ का विवेचन:

राधाकृष्णन ने धर्म को मानवीय ज्ञान के गहनतम स्तर के रूप में स्वीकार किया है । सर्वोच्च सार्वभौम और सम्यक् ज्ञान ही धर्म है । व्यक्ति का जीवन केवल जीवन व्यतीत करने की कला ही नहीं है अपितु उसका अपना एक लक्ष्य और उद्देश्य है । धर्म अथवा आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा व्यक्ति इस उद्देश्य की पूर्ति करता है । धर्म व्यक्ति की अस्पष्ट और अन्धकारयुक्त मनोवृत्ति को स्पष्ट आध्यात्मिक ज्योति में परिवर्तित कर देता है । राधाकृष्णन के

1- एस0राधाकृष्णन: 'एन आईडियलिस्ट व्यू ऑफ लाईफ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 108-109

2- एस0राधाकृष्णन: 'रिलीजन इन ए चैंजिंग वर्ल्ड' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 35

अनुसार ' धर्म ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान और चेतना का विकास है ।'[1] चेतना का विकास चरम ज्ञान की अवस्था है जो परम तत्व का साक्षात्कार और अंगीकरण करता है ।

राधाकृष्णन के अनुसार 'धर्म परम सत्ता की प्रत्यक्ष समझ (ज्ञान) है ।[2] ज्ञान हमें सिद्धि की ओर ले जाता है जिससे मुक्ति अथवा परमानन्द की प्राप्ति होती है । ज्ञान अथवा धर्म मानव की एकान्तिक अनुभूति है । ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य अपनी सुसुप्त आध्यात्मिक चेतना को जागृत करता है । आध्यात्मिक चेतना के द्वारा व्यक्ति का सीमित ज्ञान सार्वभौम ज्ञान रूप में स्वतः विकसित हो जाता है ।

धर्म के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । धर्म मय होने पर ज्ञान की प्राप्ति स्वतः हो जाती है । महात्मा बुद्ध ने धर्म को ज्ञान प्राप्ति का उपाय कहा हे । ज्ञान की प्राप्ति ही धर्म का लक्ष्य है । धर्म और ज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । राधाकृष्णन ने आनन्दानुभूति को जो सत्य ज्ञान का चरम उत्कर्ष है, को आनन्द के रूप में व्यक्त किया है । धर्म यथार्थ ज्ञान अथवा अन्तः दृष्टि की अनुभूति है । धर्म में मनुष्य सर्वोच्च आदर्श की प्राप्ति करता है । धर्म ज्ञान रूप में जीवन का प्रकाश व विधान है ।

8.1.4 मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में धर्म के अर्थ का विवेचन:

मोक्ष को जीवन का परम पुरूषार्थ कहा गया है और धर्म का मोक्ष प्राप्ति के

1- एस0राधाकृष्णनः 'ईस्ट एण्ड वेस्ट : सपरिफलेक्शन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 82

2- एस0राधाकृष्णनः 'रिलीजन इन ए चेंजिंग वर्ल्ड (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 70

साधन के रूप में स्वीकार किया गया है । धर्म के मार्ग पर चलकर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है । राधाकृष्णन के अनुसार 'धर्म मानव जीवन की आदर्श सम्भावनाओं की खोज का एक प्रयत्न है । निरर्थक, अंहकार पूर्ण, छुद्र मनोभावनाओं के अव्यवहत दबाव से मुक्ति के लिये एक साधना है ।'[1] साधना के रूप में धर्म वह उपाय है जिसके माध्यम से मानव मुक्ति प्राप्त करता है । धर्म के मार्ग पर चलकर ही मनुष्य को दुखों से छुटकारा मिलता है और वह आनन्द की प्राप्ति करता है । राधाकृष्णन के अनुसार ' धार्मिक अनुभव में हमें परम ब्रह्म का ज्ञान तथा ईश्वर से वैयक्तिक मिलन दोनों प्राप्त होते हैं । '[2] धार्मिक प्रयास से मनुष्य आध्यात्मिक जगत तक पहुंचने में सफल होता है और अपनी सीमित आत्मा के बन्धन से आजीवन मुक्त हो जाता है । महाभारत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धर्म का आचरण करने से मोक्ष रूपी सिद्धि की प्राप्ति होती है ।[3] राधाकृष्णन ने मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में धर्म के तीन मार्गों - भक्ति मार्ग, कर्म मार्ग और ज्ञान मार्ग का विवेचन किया है । उनके अनुसार, लक्ष्य तक हम भक्ति द्वारा, शुद्ध कर्म द्वारा या बौद्धिक ज्ञान द्वारा पहुंच सकते हैं । व्यक्ति, भक्ति मार्ग, कर्म मार्ग अथवा ज्ञान मार्ग में से किसी भी मार्ग का अनुसरण करते हुये परम सत्ता की प्राप्ति कर सकता है । ये तीनों मार्ग पृथक-पृथक होते हुये भी एक दूसरे के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं । सभी मार्गों का एक

1- एस0राधाकृष्णन: 'एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाईफ (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 108

2- एस0 राधाकृष्णन: 'रिकवरी ऑफ फेथ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 133

3- तस्माद धर्म प्रवतेया: सर्वावस्था युधिष्ठिर । धर्मे स्थिताना कौन्तेय सिद्धि भविति शाश्वती', महाभारत शान्ति पर्व 273/24

समान लक्ष्य है । भगवत गीता में भी धर्म के इन तीनों मार्गों को भक्ति योग, कर्मयोग और ज्ञान योग के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

8.2 धर्म के क्षेत्र :

'धर्म ' अत्यन्त व्यापक शब्द है । धर्म शब्द से किसी व्यक्ति विशेष की जीवन पद्धति और किसी समाज विशेष की सभ्यता व संस्कृति का ज्ञान होता है । मानव सम्बन्धों की दृष्टि से धर्म की व्यापकता को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है ।

1- मानव जीवन पद्धति में धर्म की व्यापकता ।

2- मानव ज्ञान में धर्म की व्यापकता ।

1- मानव जीवन पद्धति में धर्म की व्यापकता को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

(अ) व्यक्तिगत जीवन में

(ब) पारिवारिक जीवन में

(स) सामाजिक जीवन में

(द) राजनीतिक जीवन में

व्यक्तिगत जीवन में धर्म बीज रूप में निहित है । धर्म एक आत्मिक तत्व है । व्यक्ति का अनुशासित आचरण धर्म का प्रमुख लक्षण है । राधाकृष्णन ने धर्म का मनुष्य के वाह्य और आभ्यान्तर जीवन से सम्बद्ध करते हुये कहा है ' यदि धर्म, जीवन मय और व्यापक नहीं हैं, यदि वह मानव जीवन के प्रत्येक रूप में प्रवेश नहीं करता और प्रत्येक मानव कार्य को प्रभावित

नहीं करता , तो वह केवल वाह्य आडंबर मात्र है । यथार्थ का सत्य नहीं है ।[1] पारिवारिक जीवन में धर्म का विशेष महत्व है । धर्म ही वह तत्व है जिसके द्वारा पारिवारिक जीवन में सुख, शान्ति, उन्नति व विकास की प्राप्ति होती है । धर्म सामाजिक जीवन की आधारशिला है राधाकृष्णन ने समाज के विकास में धर्म के महत्वपूर्ण स्थान की विवेचना की है । उन्होंने धर्म को समाज के संयोजक के रूप में प्रस्तुत किया है जिसके कारण मानव समाज शान्ति का अनुभव करता है । मानव की संस्कृति सभ्यता और सामाजिक नियम सभी, धर्म के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं । मनुष्य की सभी क्रियायें अथवा व्यवहार धर्म के द्वारा अनुप्रमाणित हैं । राधाकृष्णन के अनुसार ' प्रारम्भ से ही धर्म मानव संस्कृति का वाहक रहा है ।[2] सभ्यता मानव समाज का वाह्य पक्ष है । सभ्यता भौतिक विकास और परिवर्तन के द्वारा समाज को व्यवस्थित और विकसित करता है । किन्तु सभ्यता के विकास व परिवर्तन में धर्म की अवहेलना नहीं की जा सकती । राधाकृष्णन के मतानुसार 'धर्म, सभ्यता का आन्तरिक पक्ष है ।'[3] सभ्यता सदैव धर्म से अनुशासित होती है । सम्भवतः वैज्ञानिक और प्रोद्यौगिक उपलब्धियां मानवीय सभ्यता का चरमोत्कर्ष हैं । विज्ञान और प्रोद्यौगिकी धर्ममुक्त है । राधाकृष्णन के अनुसार 'विज्ञान और धर्म दोनो ही मानवीय प्रतिष्ठा को बढ़ावा देते हैं ।[4] राजनीतिक जीवन में भी धर्म का व्यापक स्थान

1- राधाकृष्णन : रिकवरी ऑफ फेथ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 27

2- एस0राधाकृष्णन : 'इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 133

3- एस0राधाकृष्ण: 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 38

4- एस0 राधाकृष्णन:' रिलीजन इन चेंजिंग वर्ल्ड' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 49

है । मानवीय गौरव और स्वतंत्रता को दृष्टिगत रखते हुये राजनीतिक व्यवस्था बनी रह सकती है राधाकृष्णन के अनुसार बिना सांस्कृतिक स्तर पर उतरे कोई राजनीतिक समझ स्थायी नहीं हो सकती ।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृति व राजनीति दोनों में धर्म द्वारा निर्धारित किये जाने से ही स्थायित्व सुदृढ़ता बनी रह सकती है ।

2- मानव ज्ञान में धर्म की व्यापकता को अनेक भागों में विभाजित किया जा सकता है , यथा-

(अ) व्यवहारिक जीवन में युक्त विवेक में ।

(ब) आध्यात्मिक जीवन से युक्त तत्व मीमांसीय ज्ञान में ।

व्यवहारिक जीवन में नीति-अनीति , उचित - अनुचित, वांछनीय -अवांछनीय, अच्छे-बुरे, करणीय व अकरणीय, प्रश्नों का निर्धारण धर्म के द्वारा ही होता है । जो नैतिक है, उचित है, वांछनीय है, अच्छा है, करणीय है, वह धर्मयुक्त है और जो अनैतिक है, अनुचित है, अवांछनीय है, बुरा है, अकरणीय है, वह अधर्म है । धर्म की व्यवहारिक मीमांसा के लिये नीतिशास्त्र , सौन्दर्यशास्त्र, न्यायशास्त्र और समाज दर्शन का निमार्ण किया गया है । जिनसे व्यवहारिक जीवन में धर्म की व्यापकता पर प्रकाश पड़ता है । आध्यात्मिक निश्चयात्मक की खोज मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है । विभिन्न तत्व मीमांसीय प्रश्नों, जैसे परम सत्ता, जगत और सृष्टि का वास्तविक रूप प्रस्तुत करने की शक्ति केवल धर्म में निहित है । तत्व ज्ञान, जिज्ञासा और जीवन जगत से सम्बन्धित समस्याओं का हल धर्म से ही सम्बन्धित है । मनुष्य ही इन

1- एस0 राधाकृष्णन : 'रिलीजन इन चेंजिंग वर्ल्ड' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 10

आध्यात्मिक आकांक्षाओं में धर्म का व्यापक हस्तक्षेप है । धर्म मनुष्य की आध्यात्मिक पूर्णता का स्वप्न साकार करता है ।

इस प्रकार धर्म मनुष्य के वैयक्तिक सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन में पूर्ण रूप से घुला हुआ है । वैयक्तिक क्षेत्र में वह राग, द्वेष , क्रोध , प्रेम, लोभ, मोह, माया, भय ईर्ष्या, आदि मनोविकारों से ऊपर उठाता है । सामाजिक क्षेत्र में वह मित्रता व परस्पर सहयोग का पाठ पढ़ाता है और आध्यात्मिक क्षेत्र में भौतिक मूल्यों को महत्वहीन बताकर संकुचित स्वार्थों से ऊपर उठने पर बल देता है । धर्म का अस्तित्व तब तक समाप्त होने वाला नहीं है जब तक सृष्टि में प्रलय नहीं हो जाती । राधाकृष्णन के अनुसार 'धर्म चाहे कितने ही रूप क्यों न बदल लें, किन्तु वह तब तक बना रहेगा, जब तक की मनुष्य, जो कुछ वह अर्थात् शक्ति और दुर्बलता का मिश्रण बना रहेगा ।'[1]

8.3 धर्म के स्रोत:

राधाकृष्णन ने वेदों को धर्म का स्रोत मानते हुये भी मानव मन को धर्म का स्रोत माना है । उनके मतानुसार ' सब धर्मों का जन्म मानवीय मन की पवित्र भूमि में होता है ।' धर्म का आधार मनुष्य की आन्तरिक चेतना है । राधाकृष्णन के शब्दों में 'नि:संग आत्मा ही धर्म

1- एस0 राधाकृष्णन : 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 14

2- एस0 राधकृष्णन: 'रिलीजन एण्ड सोसायटी', जॉर्ज एलेन एण्ड अन्विन, लि0लन्दन, 1947, पृष्ठ 108

को जन्म देती है । सिंनाई पर्वत की निर्जनता में मौजेज को, बौधिवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बुद्ध को, जार्डन नदी के तट पर प्रार्थना की नीरवता में ईसा को, रेगिस्तान के एकान्त प्रवास में पॉल को, मक्का के एक निर्जन पर्वत पर मुहम्मद को और अलवेनों के पर्वतीय प्रदेश की एक खुरदरी चट्टान पर प्रार्थनारत अस्सीसी के प्रेसिस को दिव्यशक्ति और ईश्वर के आश्वासन की उपलब्धि हुई थी । धर्म में जो कुछ महान है, जो कुछ नवीन और रचनात्मक है, वह मौन प्रार्थना और एकान्त मनन के क्षणों में आत्मा का अगाध गहराईयों में उद्भूत होता है । इस प्रकार धर्म की उत्पत्ति व्यक्ति के गहन चिन्तन मनन का परिणाम है ।

राधाकृष्णन ने हिन्दू और पाश्चात्य परम्परा में समन्वय स्थापित करते हुये धर्म के निम्नलिखित चार स्रोतों को माना है -

1- श्रुति या वेद ।

2- वेदों और स्मृतियों के ज्ञाता महापुरूषों की परम्परा और अभ्यास ।

3- सद्गुणी व्यक्तियों के व्यवहार ।

4- वैयक्तिक चेतना ।

8.4 मानव जीवन में धर्म की भूमिका :

मानव जीवन में धर्म की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है । धर्म ने ही मानव की

1- एस0 राधाकृष्णन: 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 14

आध्यात्मिक और नैतिक चेतना को जागृत कर उसके जीवन को सुव्यवस्थित किया है । धर्म मानव जाति का वह सम्बल है जो उसके समस्त दुखों का समूल नाश कर शान्ति और सौहार्द उत्पन्न करता है । धर्म मनुष्य के चरम आदर्श की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण साधन है । राधाकृष्णन ने ऐसे धर्म को अयथार्थ और असत्य कहा है जो मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में सहायक नहीं होता । राधाकृष्णन के अनुसार 'यदि धर्म जीवनमय ओर व्यापक नहीं है, यदि वह मानव जीवन के प्रत्येक रूप में प्रवेश नहीं करता और प्रत्येक मानव कार्य को प्रमाणित नहीं करता तो वह केवल वाह्य आड़म्बर मात्र है, यथार्थ या सत्य नहीं है ।'[1]

धर्म व्यक्ति को सांसारिक जगत से ऊपर उठाकर निर्विकार, शुद्ध चेतना भाव में पहुंचा देता है । जिस तरह गीले बिछावन पर पड़े रो रहे बालक को उसके माता-पिता दूसरे स्वच्छ और मुलायम विछावन पर लिटा देतें हैं, उसी प्रकार सांसारिक बन्धन में पड़े दुखी मानव को धर्म अध्यात्म के निर्मल सुखद यऔर उच्च पद पर आसीन कर देता है । राधाकृष्णन के अनुसार ' धर्म का उद्देश्य हमें अपनी क्षणिक और अर्थहीन एक देशीयता से ऊपर उठाकर नित्य को सार्थकता और उच्च स्थिति तक पहुंचाना और जीवन की अराकता और व्यामोह को विशुद्ध और अमरत्व में, जो उसकी आदर्श संभावना है, रूपान्तरित करना है ।[2]॰इस प्रकार राधाकृष्णन मनुष्य की आदर्श सम्भावनाओं की प्राप्ति में सहायता करने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते हैं । धर्म, मानव को व्यवहारिक जीवन के दुखों और कष्टों को अपरिहार्य कहकर उन्हें

1- एस0राधाकृष्णन :'रिकवरी ऑफ फेथ'(हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 27

2- एस0 राधाकृष्णन :' एन आईडियलिस्ट व्यू ऑफ लाईफ ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 152

सहन करने की शक्ति प्रदान करता है । राधाकृष्णन ने धर्म को मानव के सर्वांगीण विकास के साधन के रूप में स्वीकार किया है ।

धर्म, मानव में प्रेम और विश्व बन्धुत्व की भावना को जागृत करता है और उनमें एकता का संचार करता है लेकिन वर्तमान युग में संप्रदायवादी धर्मों ने समूह निष्ठाओं, निःस्वार्थी और अति प्राचीन, अति संस्कृत और आदि कालीन मतवादों को प्रश्रय दिया है । राधाकृष्णन ऐसे धर्मों को वाह्य आडम्बर मात्र स्वीकार करते हैं क्योंकि वे धर्म का मानव जाति और सम्पद्राय की सीमा में बांधकर उसे विश्व बन्धुत्व और मानवता की भावना से दूर ले जाते हैं । राधाकृष्णन के अनुसार धर्म का सम्बन्ध ' मनुष्य की बौद्धिक प्रकृति, अपने को जानने की उसकी प्रक्रिया तथा जिस संसार में वह रहता है उससे सम्बन्ध है ।[2] लेकिन मानव अपनी बुद्धि का दुरूपयोग कर धर्म को ही विकृत कर देता हे । धर्म की अन्धविश्वासी और आड़म्बरपूर्ण प्रकृति धर्म के विकृत रूप का परिणाम है । राधाकृष्णन के अनुसार,' धर्म का प्रधान महत्व आन्तरिक रूप में मनुष्य को उन्नत और विकसित करने की उसकी शक्ति में निहित हैं, किन्तु वह निर्दोष तब तक नहीं बन पाता जब तक वह अपने वाह्य अस्तित्व को सम्यक रूपेण संवार नहीं लेता । इसके लिये एक स्वस्थ राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन की तथा एक ऐसी शक्ति और कार्यकुशलता की आवश्यकता है जो लोगों को केवल जीवित ही न रखे वरन् सामुहिक पूर्णत्व की ओर बढ़ाये । यदि कोई धर्म इन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करता, तो समझना चाहिये कि उसमें

1-एस0राधाकृष्णन : 'इस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद),पृष्ठ 54

2- एस0राधाकृष्णनः 'रिकवरी ऑफ फेथ' (हिन्दी अनुवाद),पृष्ठ 87

कहीं कोई दोष है । वह दोष चाहे उसके अनिवार्य सिद्धान्तों में हो या उन सिद्धान्तों के प्रयोग में । केवल अन्तर्दृष्टि के द्वारा ही आध्यात्मिक दृष्टिकोण का निर्माण नहीं होता वरन् इसके लिये एक तर्क संगत और दृढ़ सामाजिक संस्था का होना भी आवश्यक है ।[1]

धर्म मनुष्य में उच्च मानवीय गुणों को विकसित करता है । वह मानव में नैतिकता सदाचार और प्रेम की भावना का विकास करता है जिससे मानव में एकता और समन्वय की भावना पैदा होती है । धर्म मानव के काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण बुराईयों को समाप्त करता है और मानव को कुकृत्यों से बचाता है । धर्म अन्तर्आत्मा को उन्नत व विकसित करता है । राधाकृष्णन के अनुसार, ' धर्म मानवात्मा की उठान है जो किसी के अन्दर उस वस्तु को अनावृत या प्रत्यक्ष कर देती है जो उसके जीवन के स्वतः से निर्मित हुआ रहता है ।[2]

8.5 सर्वधर्म समन्वयः (विभिन्न धर्मों की एकता एवं समन्वय)

राधाकृष्णन ने अपने दर्शन के द्वारा विभिन्न धर्मों में समन्वय करने का प्रयास किया है । उनका कहना है कि विभिन्न धर्म सहयोगी की तरह सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति में निमग्न है ।[3] उनकी दृष्टि में सभी धर्म मूलतः एक है और उनकी जड़ में एकता निवास

1- एस0राधाकृष्णन :'इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 92-93

2- एस0राधाकृष्णनः 'रिकवरी ऑफ फेथ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 129

3- राधाकृष्णन :'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 29

करती है । समस्त धर्मों में एक ही सर्वनिष्ठ तत्व और एक सामान्य आधार है, जिस पर उसकी निष्ठा एवं उपासना निर्भर है । एक धर्म का दूसरे धर्म से भेद धर्म के अनावश्यक तथ्यों के कारण दृष्टिगोचर होता है ।

विभिन्न धर्म एक ही सत्य का स्पष्टीकरण करते हैं । ईश्वर एक है और विभिन्न धर्मों का केन्द्र बिन्दु ईश्वर ही है। यही ईश्वर विभिन्न धर्मों का आधार है । वे मानते हैं कि विश्व के विभिन्न धर्मावलम्बियों में से एक ही सत्ता के प्रति प्रेम और विश्वास पाया जाता है । वे केवल ईश्वर की एकता पर ही बल नहीं देते बल्कि उनकी मान्यता है कि ईश्वर की उपासना करने वाली उपासक आत्मा में भी एकता है । उनके अनुसार सभी धर्मों में रहस्यात्मक अनुभूतियाँ होती है । सभी अनुभवकर्त्ता अपने-अपने ढ़ंग से परम सत्ता का वर्णन करने का प्रयत्न करते हैं । यद्यपि धार्मिक अनुभूति में तत्वतः समानता होती है तथापि वाह्य रूप में उनमें भेद दृष्टिगोचर होता है । वे देश संस्कृति और काल के आधार पर धार्मिक अनुभूति के अन्तर को स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत पूजा, अर्चना, उपासना को मानता है इसलिये विभिन्न धर्मों के वाह्य एवं क्रियात्मक पक्ष में विषमता दिखलाई देती है । राधाकृष्णन के अनुसार विभिन्न धर्मों में सामञ्जस्य संभव है । इस सामञ्जस्य को वे आध्यात्मिक रूप से सम्भव मानते हैं ।

राधाकृष्णन सभी धर्मों को मनुष्यों के आध्यात्मिक विकास में सहायक मानते हैं उनके अनुसार सभी धर्म भिन्न रूपों में मनुष्य के आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन को प्रकट करते हैं । वे मानव जाति को ऐसी बहुमुखी सम्पूर्णता की ओर ले जा सकते हैं, जिसमें हिन्दू धर्म की

आध्यात्मिक ज्योति, यहूदी धर्म की आस्था व आज्ञाकारिता, करूणा, यूनानी देवता अर्जन की सुन्दरता, बौद्ध धर्म की भव्य करूणा, इसाई धर्म की दिव्य प्रीति और इस्लाम की त्याग भावना सम्मिलित हैं ।[1]

राधाकृष्णन धार्मिक कट्टरता के विरोधी हैं । उनके मतानुसार यही कट्टरता 'मनुष्य-मनुष्य में भेद' पर बल प्रदान करती है । प्रत्येक धर्म उपासना पर बल देता है । यद्यपि उनकी उपासना पद्धति में अन्तर है, फिर भी वे मूलतः समान है, क्योंकि सभी धर्म उपासना के द्वारा ईश्वर को पूजने का प्रयास करते हैं । सभी धर्मों में कतिपय मूल्यों, सत्य, अहिंसा, अस्तेय आत्म संयम, दया परोपकार आदि को स्वीकार किया गया है । प्रत्येक धर्म में इनके महत्व को स्वीकार किया गया है । इसलिये कोई भी धर्म छोटा या बड़ा नहीं है, सभी धर्म प्रगतिशील है । किसी भी धर्म को असत्य अपरिवर्तनशील और निरपेक्ष नहीं माना जा सकता ।

विभिन्न धर्मों के बीच अनेकता का मूल कारण अपने धर्म के मूल सत्य स्वरूप का न समझ सकना है ।

राधाकृष्णन ने विभिन्न धर्मों के मतभेद पर प्रकाश डालते हुये कहा कि धर्मों में विभिन्नतायें महत्वपूर्ण इसलिये दिखाई पड़ती है क्योंकि हमें अपने ही धर्म के आधारभूत सत्य का ज्ञान नहीं है ।[2]

1- एस0 राधाकृष्णन :'फेग्मेन्ट ऑफ ए कनफेशन', फिलासिफी ऑफ राधाकृष्णन सक0 शिल्प, पृष्ठ 76

2- एस0 राधाकृष्णन : 'फैलोशिप ऑफ दी स्पिरिट' (हिन्दी अनुवाद) , पृष्ठ 5

महात्मा गाँधी ने विभिन्न धर्मों की अभिन्नता के विषय में कहा है कि अपने धर्म के वास्तविक रहस्य को समझने के बाद धर्म में निहित मतभेद दूर हो जायेगा । जिस प्रकार विभिन्न नदियां भिन्न-भिन्न दिखाई देती हैं लेकिन सबका मिलन एक ही समुद्र में होता है । सबका अन्त एकता अथवा अभिन्नता में होता है इसी प्रकार धर्म भले ही अनेक हो, किन्तु उद्देश्य की दृष्टि से सभी एक ही है । सभी धर्म एक ही उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति एक ही उद्देश्य प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है ।[1] राधाकृष्णन ने विभिन्न धर्मों के बीच उत्पन्न खाई को पाटने का पूर्ण प्रयत्न किया है । उन्होंने विभिन्न धर्मों के बीच तार्किक एकता स्थापित कर उनकी मौलिक एकात्मकता को स्पष्ट किया है ।

राधाकृष्णन ने धर्म के सामान्य मौलिक तथ्यों को स्पष्ट करते हुये व्यक्ति के अन्तर तर्क में निहित विश्व परिवार की भावना को जागृत करने का प्रयास किया है । उनका सम्पूर्ण प्रयास धार्मिक एकता स्थापित करने का रहा है । वे कहते हैं निर्जीव से मानव क्षितिज पर बौद्धिकता या चिन्तन मनन का उदय हुआ है । तभी से विभिन्न धर्मों में एकता लाने का विचार समाज के नेताओं की कल्पना में मंडराता रहा है ।[2] उनके अनुसार विभिन्न धर्म सम्प्रदाय अन्धों द्वारा स्पर्श किये जाने वाले उस हाथी के समान है जो हाथी के अलग-अलग अंगों को हाथी की पूर्ण स्वरूप बतलाने की हठ करते हैं उनके यथार्थ स्वरूप का बोध हो जाने के

1- सम्पादक-रामनाथ समननीति : 'धर्मः दर्शी(गाँधी जी)', गाँधी साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968, पृष्ठ 140

2- एस0 राधाकृष्णन : ' इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 337

बाद उन्हें अपनी आंशिकता का ज्ञान हो जाता है । राधाकृष्णन ने विभिन्न धर्मों के मतभेदों को अस्वीकार करके उनकी समानता पर भी बल दिया ।

उन्होंने विभिन्न धर्मों में निहित सामान्य तथ्यों को सम्बन्धित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । राधाकृष्णन ने सच्चे धर्म की व्याख्या करते हुये कहा है कि सच्चा धर्म चाहे किसी हिन्दू महात्मा का हो, जरथ्रुत, बुद्ध, ईसा, मौहम्मद या नानक का हो, इससे यह मांग करता है कि हम घृणा और हिंसा का मुकाबला शक्ति और सम्मान के साथ करें ।[1]

विश्व में विभिन्न धर्मों ने अपने धर्म की सर्वोच्चता को सिद्ध करने के लिये अनेक प्रकार के अमानवीय शोषण व अत्याचार को जन्म दिया है । जिसके फलस्वरूप एक दूसरे सम्प्रदाय के बीच भंयकर दूरी पैदा हुई है ।

राधाकृष्णन ने कहा है ' एक धर्म का दूसरे धर्म से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है ।[2] यही कारण है कि विभिन्न धर्मों के बीच उत्पन्न संघर्ष घटने या समाप्त होने के बजाये और बढ़ता जा रहा है । धार्मिक असिहष्णुता के प्रति दुख प्रकट करते हुये वे कहते हैं कि 'आज धर्म मनुष्य - मनुष्य में एकता स्थापित करने की बजाये उन्हें विभाजित कर रहे हैं । आज के इस वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी युग में जबकि विभिन्न राष्ट्रों की दूरियां समाप्त हो गई हैं, एक समुदाय दूसरे समुदाय से अलग नहीं रह सकता । अतः यह आवश्यक है कि विभिन्न धर्मों में एकता सामञ्जस्य और सहअस्तित्व की स्थापना की जाये । राधाकृष्णन ने उस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

1-राधाकृष्णन : 'पूर्व और पश्चिम : कुछ विचार ' (हिन्दी अनुवाद) , पृष्ठ 135

2- एस0 राधाकृष्णन:'एन आइडियलिस्टीक व्यू ऑफ लाईफ', (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 50

राधाकृष्णन के अनुसार एक विश्व धर्म से ही मनुष्य की कठिनाईयां दूर हो सकती हैं । उनके विचार में आज के मनुष्य को विशेष धर्म विश्वास या संस्कृति तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहिये । वे हर मनुष्य को एक ही विश्व परिवार का सदस्य मानते हैं । उनका कहना है कि एक विश्व के आदर्श के लिये मनुष्यों को जातीय, वर्गीय, आर्थिक और धार्मिक वेदों को समाप्त कर देना चाहिये । मनुष्य जाति के व्याप्त भेद, अन्याय और धार्मिक असहनशीलता का निराकरण एक धर्म के स्वीकार करने से ही हो सकता है । इस विश्व धर्म से ही मनुष्य के समस्त कष्टों का निवारण हो सकता है । उनके अनुसार विभिन्न धर्मों से जो मत विभिन्नता उत्पन्न हो जाते हैं वे धर्मों की मौलिक एकात्मकता को आच्छादित कर लेते हैं किन्तु विश्व धर्म जिसका तात्पर्य है समस्त धार्मिक मान्यतायें, जिनका अनुपालन होता आया है जो आत्मसात करता है ।

राधाकृष्णन के अनुसार, विश्व के विभिन्न धर्मों में कोई भी एक धर्म पूर्ण व अन्तिम नहीं है । वे धर्म को विकास मानते हैं । अतः मनुष्य के लिये यह धर्म अथवा वह धर्म उपयुक्त नहीं है वरन् सच्ची धार्मिक आस्था आवश्यक है । मनुष्य किसी एक धर्म में पैदा होता है । लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी धर्म विशेष की सीमा रेखा में आबद्ध हो जाये आज के युग की आवश्यकता धार्मिक सहिष्णुता की भावना को जागृत करना है । धर्म का मूल सहिष्णुता है । राधाकृष्णन के विचार से जिस व्यक्ति में दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता नहीं है वह अपने धर्म की भी रक्षा नहीं कर सकता । राधाकृष्णन धार्मिक आस्था की व्यापकता को

स्वीकार करते हुये विभिन्न धर्मों की एकता को मान्यता देते हैं । विश्व बन्धुत्व और मानवीय एकता का यही मूल मंत्र है । वे साम्प्रदायिक धर्म के विनाशकारी परिणामों से भली भांति अवगत प्रतीत होते हैं और उसके प्रति सर्तक होने की चेतावनी देते हैं । उन्होंने धार्मिक रूढ़िवादिता की अत्यन्त कठोर शब्दों में आलोचना की है । वे रूढ़िवादिता को मनुष्य की सनक कहते हैं । उनके अनुसार मनुष्य को बौद्धिक चिन्तन के द्वारा धर्म के रूढ़िगत सिद्धान्तों की परख करनी चाहिये ।

8.6 धर्म एवं नैतिकता:

राधाकृष्णन ने नैतिकता को धर्म का अभिन्न अंग माना है । जिस प्रकार धर्म की नींव नैतिकता पर है, उसी प्रकार नैतिकता का आधार धर्म है । धर्म को वे मूलतः धर्म और नैतिकता का समन्वय मानते हैं । इसलिये उनकी मान्यता है कि सच्चे धर्म और सच्ची नैतिकता में कोई अन्तर नहीं है । राधाकृष्णन का कहना है कि ' केवल धर्म ही आधार नीति को आश्वस्त कर सकता है और इसका क्षेत्र विस्तृत कर सकता है । हम व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का मूल्यांकन केवल इसलिये करते हैं कि हम सामाजिक प्राणी ही नहीं है वरन् आध्यात्मिक प्राणी भी है ।'[1] राधाकृष्णन ने स्पष्ट किया है कि भौतिकता आध्यात्मिकता से युक्त है । आध्यात्मिक चेतना के द्वारा ही व्यक्ति नैतिकता को समझ सकता है और उसे निर्धारित कर सकता है । उनके अनुसार ' आध्यात्मिक धरातल तक पहुंच जाना नैतिकता से ऊपर उठ जाना है ।'[2]

1- एस0राधाकृष्णन: 'इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 99-100

2- एस0 राधाकृष्णन: 'एन आइडियलिस्टक व्यू ऑफ लाईफ (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 304

अतः मानव ईश्वर को समझ जाता है और स्वयं ईश्वरीय शक्ति व दिव्य मानव हो जाता है । राधाकृष्णन के अनुसार ' नैतिक जीवन में भी उच्चतम स्थिति पर पहुंचने के लिये अन्तर्ज्ञानात्मक दृष्टि अनिवार्य है ।[1] राधाकृष्णन नैतिकता के बिना जीवन को सारहीन मानते हैं । जीवन के लिये नैतिकता का विकास होना अत्यधिक आवश्यक है । उनके नैतिक सिद्धान्त, उनके सम्पूर्ण अनुभव के आदर्श द्वारा निर्धारित है । जब सम्पूर्ण आध्यात्मिक अनुभव को व्यवहार में लाया जाता है तब वह नैतिक कार्य हो जाता है । जिस प्रकार सम्पूर्ण आध्यात्मिक अनुभव को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता , न तो प्रक्रिया में और न प्राप्ति की अवस्था में । इसी प्रकार नैतिक व्यवहार अंततः स्फुरण पर आधारित है और उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता । सत् के अन्तः प्रेरित होने पर मनुष्य निष्कर्ष पर पहुंच जाता है परन्तु जिस मनुष्य में यह शक्ति है वह साधारण नहीं है । वह मुक्त प्राप्त आत्मा है, वह नैतिक आत्मा है । दूसरों के लिये कुछ साधारण सद्गुण हैं जिन्हें साधारण दर्शन कह सकते हैं । साधारण मनुष्यों को इन सद्गुणों को साधना की तरह प्रयोग में लाना चाहिये ।[2]

राधाकृष्णन नैतिकता को नियमों और कानूनों के रूप में स्वीकार नहीं करते वरन् उसे उच्च रूप में स्वीकार करते हैं । इस प्रकार राधाकृष्णन के नैतिकता सम्बन्धी ये विचार सामान्य रूप से प्रचलित नैतिकता के विरोधी हैं, क्योंकि नैतिकता का सामान्य अर्थ कुछ नैतिक

1- एस0 राधाकृष्णन : 'एन आइडियलिस्टीक व्यू ऑफ लाईफ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 245

2- एस0 राधाकृष्णनः 'दी हिन्दू व्यू ऑफ लाईफ ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ट 64

नियमों के निर्धारित किये गये व्यवहार से लगाया जाता है । इन नैतिक नियमों के पालन के लिये मानव बाध्य है । मानव को इनके विषय में किसी प्रकार के तर्क की स्वतंत्रता नहीं है क्योंकि ये समाज के द्वारा निर्मित किये गये है । समाज का सामान्य मानव स्वयं नैतिक नियमों का निर्धारण करने में सक्षम नहीं है । इसलिये वह नैतिक नियमों का निर्धारण समाज के ऊपर छोड़ देता है । समाज जिन नियमों को निर्धारित करता है , मानव बिना किसी विरोध के उसका अनुसरण करता है ।

राधाकृष्णन धर्म और नैतिकता को सामाजिक कल्याण के लिये परम आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके विचारों से स्पष्ट है कि मानव जीवन में व्याप्त असंतोष, विभ्रम, वैमनस्यता की अवहेलना कर मानव जाति के विनाश का खतरा उठाकर आत्मा को बचाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये । नैतिकता और धर्म सामाजिक व्यवस्था के लिये अनिवार्य है ।

राधाकृष्णन की नैतिकता की व्याख्या अन्तर्ज्ञान पर आधारित है । उनके अनुसार अन्तर्ज्ञान के द्वारा ही हमारे विचार प्रशिक्षित और अनुशासित होते हैं और इसी के द्वारा हमें सत्य, शिव और सुन्दर की उपलब्धि होती है । उनके अनुसार 'मानव मन मूल्यों की खोज करता है । वह एक्य और सामञ्जस्य, सहअस्तित्वता और सौन्दर्य योग्यता और अच्छाई को पाने के लिये प्रयत्न करता है ।'[1] अन्तर्ज्ञान चिन्तन और अनुशासन हमारे विचारों को समृद्ध करते हैं । राधाकृष्णन ने इन तीनों मूल्यों , सत्यं, शिवं और सुन्दरं को ईश्वर के अंग के रूप में स्वीकार किया है । अन्तर्ज्ञानात्मक अवबोध के कारण व्यक्ति इन मूल्यों को समझता है और चूंकि ये मूल्य ईश्वर के ही अंग है । ईश्वर इन मूल्यों की एकता है।

1- एस0 राधाकृष्णन : 'एन आइडियलिस्टिक व्यू ऑफ लाईफ' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 248

राधाकृष्णन नैतिकता और सदाचार को ज्ञान प्राप्ति में सहायक के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार मानव को सदाचार अपनाना चाहिये । सदाचार का उल्लेख प्रायः प्रत्येक धार्मिक ग्रन्थ में किया गया है । जीवन में तप, दान, साधुता, अहिंसा, सत्यवादिता आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । राधाकृष्णन की मान्यता है कि इनके पालन से जहाँ एक ओर मानव को पुण्य-लाभ प्राप्त होता है और वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता है वहीं दूसरी ओर इसका पालन करने से सामाजिक भलाई होती है । सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह ऐसे सद्गुण है जो मानव विकास में सहायक सिद्ध हुये हैं ।

राधाकृष्णन का कहना है कि सत्यवादिता मानव के लिये इतनी आवश्यक है कि इसको अपनाये बिना मानव कोई कार्य सुचारू रूप से नहीं कर सकता । सत्य और अहिंसा मानव के मस्तिष्क में समाये हुये हैं । मनसा, वाचा, कर्मणाः सभी को इसका पालन करना चाहिये, अहिंसा, निष्क्रिय या कोई निष्कर्म वस्तु नहीं है वरन् हर प्राणी के साथ सह अस्तित्व और प्रेम के साथ रहना है । करूणा और दया अहिंसा को प्रकट करने के माध्यम है । ब्रह्मचर्य का अर्थ कामवृत्ति को नष्ट करना नहीं है । शरीर पर नियंत्रण करके ब्रह्मचर्य के पालन करने की आवश्यकता है । जिससे समाज का विकास निरन्तर पूर्णता की ओर हो सके । राधाकृष्णन का कहना है कि मानव को अपने अन्दर वैराग्य की भावना का विकास करना चाहिये । उनकी दृष्टि में वैराग्य का अर्थ सन्यासी बनकर जगत की उपेक्षा करना नहीं है । वैराग्य का अर्थ सांसारिक वस्तुओं से अनुराग न रखना है । वैराग्य आसक्ति का विरोधी है । मानव को अपने अन्दर इस भावना का विकास करना चाहिये कि वह सांसारिक वस्तुओं से अपने को अलग कर सके ।

राधाकृष्णन शान्त चित्तता पर बल देते हैं और कहते हैं कि सदाचारी व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति से ईर्ष्या या द्वेष न रखकर सबसे प्रेम करना चाहिये । वे संचय की भावना का त्याग करने पर बल देते हैं । उनका कहना है कि जब तक इस भावना का त्याग नहीं किया जायेगा, अहं अन्तर में अपना स्थान बनाये रखेगा । वस्तुतः संचय से ही भय का जन्म होता है । इसलिये वे त्याग करने पर बल देते हैं लेकिन उनके अनुसार मानव को अपने कर्त्तव्य का त्याग नहीं करना चाहिये । राधाकृष्णन के विचार से जातीय और वर्ग भेद सामाजिक अवनति के कारण रूप है । इन्हें समाज से पूर्ण रूपेण समाप्त करने की आवश्यकता है । राधाकृष्णन के अनुसार ये ऐसे गुण हैं जिनके अभाव में सामाजिक जीवन जीने में कठिनाई होती है । वे कहते हैं कि नैतिक मार्ग अकेला ही हमें पूर्णता के सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुंचा सकता है । नैतिक अनुशासन के द्वारा मानव सम्पूर्ण अच्छाईयों और बुराईयों पर विजय प्राप्त कर सकता है ।[1]

राधाकृष्णन नैतिकता को मनुष्य के सामाजिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास का आधार मानते हैं । नैतिकता केवल सद्गुणों का समन्वय मात्र नहीं है अपितु चरित्र के अन्तर्गत एक ऐसा संगठन है कि वे सभी मिलकर एक इकाई का रूप धारण करते हैं । नैतिकता एक अत्यन्त व्यापक गुण है तथा इसका प्रभाव मानव के सभी क्रियाकलापों पर अत्यन्त ही सूक्ष्म एवं विलक्षण होता है । इससे व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आन्दोलित होता है । अतः मानव के सामाजिक बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिये नैतिकता के संगठन और संवर्धन की शिक्षा आवश्यक है ।

1-ए0एन0मार्ली : 'राधाकृष्णन ऐन एन्थोलॉजी' जॉर्ज एलेन एण्ड अन्विन लि0,लन्दन, 1952,पृष्ठ 73

8.7 धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन:

राधाकृष्णन के अनुसार धर्म के मौलिक स्वरूप को समझने का एकमात्र सफल प्रयास धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन है । धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन ने धर्म - धर्म के बीच खड़ी की गई उन दीवारों को गिरा दिया है, जिसके पीछे धर्मान्ध व्यक्ति शरण लेते हैं और यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि उनका धर्म ही संसार में अनुकरणीय धर्म है ।[1] विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के बीच उत्पन्न विवादों को दूर करने का एकमात्र साधन धर्म का तुलनात्मक अध्ययन है । धर्म के विषय में जो वर्तमान आपत्तियां उठाई जा रही है, उनका निवारण प्राचीन मतों को जानकर, उन पर विचार करके ही धर्म को उन्हें आस्था और विश्वास के स्तर पर लाकर सुदृढ़ करके खड़ा किया जा सकता है । धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि विभिन्न मतवाद अपने में पूर्ण नहीं है अपितु वे आंशिक सत्य है ।

धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न धर्मों के ऐतिहासिक स्वरूप को स्वीकार किया गया है । धर्म के ऐतिहासिक स्वरूप से स्पष्ट है कि धर्म सदैव परिवर्तित एवं विकसित होता रहा है । धार्मिक मान्यताएं सदैव संस्कृति, सभ्यता और समाज की आवश्यकतानुसार परिवर्तित होती रही है । स्पष्ट है कि कोई भी धर्म अन्तिम अथवा पूर्ण नहीं होगा । प्रत्येक धर्म में पुरातन के अवशेष विद्यमान है ।[2]

1-एस0राधाकृष्णन: 'इस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 75

2- राधाकृष्णन: 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 15

कोई भी धर्म सर्वथा नवीन नहीं है सभी धर्मों के अन्तर्गत उनकी पुरानी मान्यताओं का किसी न किसी रूप में समावेश अवश्य है । धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा धार्मिक मतभेदों की व्याख्या कर उनके परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करने में सहायता मिलती है । इसी प्रकार धर्म के विकृत स्वरूप का जो वर्तमान जीवन के लिये अत्यन्त चिन्ताजनक समस्या है, निवारण करने में तुलनात्मक धर्मों के अध्ययन की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

तुलनात्मक धर्मों का अध्ययन निष्पक्ष और स्वतंत्र वातावरण में सार्वभौम और सत्य धर्म की खोज करते हुये यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न धर्मों में समान उद्देश्य की प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं । राधाकृष्णन के अनुसार ' तुलनात्मक धर्म यह मानता है कि हमारे सब धर्मों का कुछ न कुछ मूल्य है ।' [1]अतएव किसी भी धर्म को तुच्छ और हीन कहना असंगत विचार है । तुलनात्मक धर्म परमात्मा की सार्वभौमिकता में हमारे विश्वास और मानव जाति के प्रति हमारे आदर को बढ़ाता है ।[2]

तुलनात्मक धर्मों के अध्ययन के द्वारा विभिन्न धर्मों में निहित भेद को मिटाने का प्रयास किया गया है । इसमें सत्य और मिथ्या कहे जाने वाले धर्मों के बीच भेदभाव को अमान्य व मिथ्या कहा गया है । सत्य और मिथ्या धर्म का अर्थ अपने और पराये धर्म से है । यहूदी और गैर हिन्दु और मलेच्छ, यूनानी और बर्बर, ईसाई और विधर्मी, मुसलमान और काफ़िर मतों से आपस में एक दूसरे की सत्य और मिथ्या धर्म के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है । धर्मों के

1- एस0राधाकृष्णन: 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 113

2- वही, पृष्ठ 28

तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इस प्रकार के विवादों को तुच्छ और अनर्गल कहकर निन्दा की गई है । धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि सभी धर्मों में कुछ न कुछ सत्यता, अच्छाई और महत्ता विद्यमान है । कोई एक धर्म ही सत्य, अच्छा और मूल्यवान नहीं है राधाकृष्णन के अनुसार 'हम स्वयं अपने धर्म को तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि उसकी अन्य किसी एक या अनेक धर्मों के साथ तुलना करके न देख लें ।[1] धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन अन्य धर्मों से अपने धर्म की तुलना करने में सहायक होता है । इसके द्वारा हमें अन्य धर्मों की परम्पराओं और अपने धर्म की परम्पराओं के विषय में एक नया अवबोधन व मूल्यांकन प्राप्त होता है । इससे समस्त धार्मिक विरोधाभास, संगतियों और विमूढ़ताओं का निवारण कर संकुचितता से ऊपर उठकर समस्त धर्मों के समान तत्व एक लक्ष्य अथवा उद्देश्य का ज्ञान होता है । इस प्रकार धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन इस रूप में मानव जाति के आध्यात्मिक विकास की ऐतिहासिक चेतना को प्रदर्शित करता है ।

राधाकृष्णन धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की पद्धति के अध्ययन से ही प्राच्य एवं पाश्चात्य धर्मों की समानताओं और असमानताओं को चित्रित कर पूर्व और पश्चिम के सम्पर्क अधिकारी[2] और सेतु निर्माता'[3] जैसी उपाधियों से विभूषित हुये । उनके शब्दों में ' किसी भी धार्मिक

1-एस0राधाकृष्णन: 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 34

2- एस0राधाकृष्णन :'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन' (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 34

3- सी0ई0एम0 जोड़'काउन्टर अटैक फाम दि ईस्ट', हिन्दी किताब्स लि0, बम्बई, 1951, पृष्ठ 29

अन्तर्राष्ट्रीय वाद के लिये तुलनात्मक धर्म का अध्ययन अपरिहार्य आधार है ।[1] धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन समस्त धर्मों को सुदृढ़ आधार प्रदान करता है और इस आधार पर किसी भी धर्म को पराजित कर उसे असत्, मिथ्या अथवा भ्रान्त नहीं कहा जा सकता ।

8.8 धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता:

राधाकृष्णन धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में है । उनके अनुसार धार्मिक शिक्षा के आधार पर मनुष्य की भौतिक तथा पाशविक प्रवृत्तियाँ परिशोधित हो सकेंगी और वह मानवता के उच्च आदर्शों से अपना हार्दिक सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगी । धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में राधाकृष्णन के विचार अत्यन्त उदात्त है । उनके अनुसार धार्मिक शिक्षा अपने वास्तविक स्वरूप में सर्वश्रेष्ठ है और विश्व शान्ति की जननी है । राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा और धर्म का सम्बन्ध शरीर और आत्मा का सम्बन्ध है । यदि धर्म को शिक्षा से अलग कर दिया जाये तो हमारी आध्यात्मिक मृत्यु हो जायेगी । मानव जीवन का लक्ष्य है हृदय की पवित्रता, चित्त की शान्ति, जो हमें धर्म के द्वारा ही प्राप्त होती है ।

राधाकृष्णन धर्म को व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हैं और उसे जीवन का एक अभिन्न अंग मानते है । वे नैतिकता के बिना जीवन को सारहीन बताते हैं उनके अनुसार नैतिकता का विकास जीवन के लिये आवश्यक है । वे छात्रों को धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा प्राप्त करने पर अत्यधिक बल देते हैं ।

राधाकृष्णन यह मानते हैं कि भारत का अतीत इसलिये महान था क्योंकि

1- सी0ई0एम0जोड: 'काउन्टर अटैक फ्राम दि ईस्ट', हिन्दी किताब्स लि0, बम्बई, 1951, पृष्ठ 31

उस समय के समाज में नैतिकता का बाहुल्य था लेकिन आज ऐसे लोगों का अभाव है और हमारी शिक्षा संस्थाएं भी ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करने में सफल नहीं हो रही है । राधाकृष्णन के अनुसार भारत ऐसे लोगों के लिये विख्यात है जिनका ध्येय भौतिक सफलता नहीं था और जो नैतिक जीवन यापन करना चाहते थे । उनके दृष्टिकोष में सन्तुलन, उनके सामाजिक जीवन में तारतम्य, उनके व्यक्तिगत जीवन में भार-तुल्यता, उन्हें समस्त विश्व में अपूर्व बना देती थी । केवल अपने सुन्दर अतीत के विषय में बात करना व्यर्थ है । हमें उनके उदाहरण को वर्तमान में भी चरितार्थ करना चाहिये । हमें पूर्ण रूप से संतुलित दृष्टिकोण को अपनाना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, नैतिक नियम, आर्थिक शक्ति, कलात्मक जीवन तथा आध्यात्मिक प्रयत्न का जीवन में एक स्थान होना चाहिये । हमारे समाज को ऐसे व्यक्तियों की बहुत अधिक आवश्यकता है जो ऊपर लिखे हुये आदर्श में विश्वास करें । दुर्भाग्य से ऐसे लोगों में जिनकी हमारे समाज को आवश्यकता है और उनको जिन्हें हमारे शिक्षालय निकाल रहे हैं, दरार है ।'[1] हमारी संस्थाओं में विशेष रूप से शिक्षा संस्थाओं में कहीं न कहीं कुछ भूल है । जितनी ही जल्दी हम उसे सुधार सकें, उतना ही वह हमारे लिये श्रेयस्कर होगा ।[2]

1- एस0राधाकृष्णन: 'ओकेज़नल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स', खण्ड द्वितीय, पबलिशड बाय दी मिनिस्टरी ऑफ इनफोरमेशन एण्ड ब्रोडकास्टिंग, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 249

2- वही, पृष्ठ 249

राधाकृष्णन ने वर्तमान भौतिक खोखलेपन की निन्दा की है और कहा है कि ' आज के युवकों को शीघ्र अति शीघ्र नैतिक और धार्मिक नियमों को जानने की आवश्यकता है । उनका कहना है कि बिना किसी ध्येय के जीवन निरर्थक है । क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हमारे युवक अर्थपूर्ण जीवन व्यतीत करें और उनके सम्मुख महान आदर्श हों ।[1]

किसी देश की महानता उस देश की सीमाओं से अथवा वहाँ के धन और यातायात के साधनों से निर्धारित नहीं की जा सकती । यद्यपि उनका भी अपना स्थान है ।[2] परन्तु किसी देश की महानता वहाँ पर आध्यात्मिक रूप से कितने समर्थ लोग हैं, इसके द्वारा जानी जा सकती है । जिस शिक्षा प्रणाली के द्वारा इस महान ध्येय की प्राप्ति हो सकती है । वही वास्तविक शिक्षा है । यह सत्य है कि व्यवसायिक और औद्योगिक शिक्षा भी महत्वपूर्ण है किन्तु यदि मनुष्य की आत्मा अतृप्त रहे तो यह निरर्थक है ।[3] व्यवसायिक और औद्योगिक शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल देने पर कुछ वैज्ञानिक और विशेष कला

1- सिंह, आर0पी0: 'राधाकृष्णन - शिक्षा शास्त्री के रूप में ,'एशियन पब्लिशर्स, जालन्धर सिटी, 1968, पृष्ठ 51

2- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 66

3- सिंह आर0पी0: 'राधाकृष्णन -शिक्षाशास्त्री के रूप में,' एशियन पब्लिशर्स ,जालन्धर सिटी, 1968, पृष्ठ 51-52

35 में निपुण व्यक्तियों का निमार्ण तो हो सकता है । परन्तु इसके साथ-साथ नैतिक तृप्ति भी आवश्यक है । हमारे समाज को राक्षस राज से रक्षा करने के लिये राधाकृष्णन ने कहा कि यदि हम संस्कृत है तो हमें निर्धन और दुखी व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करनी चाहिये और मानवता के भ्रातृमण्डल में रंगे राष्ट्र अथवा धर्म के भेद को छोड़ने पर विश्वास होना चाहिये । शान्ति और स्वतंत्रता से प्रेम, क्रूरता के प्रति तीव्र घृणा और न्याय के प्रति अनन्त निष्ठा होनी चाहिये । [1]

वर्तमान युग भौतिकवाद को प्रधानता देकर आध्यात्मवाद की अवेहलना करता है । आज इस बात की महत्ती आवश्यकता है कि हम सांसारिक सुखों को ही सब कुछ न माने वरन् आध्यात्मवाद की ओर कदम बढ़ाये, वस्तुतः भौतिकवाद ही संसार के सब संघर्षों का मूल है । इसी से अनेक बुराईयां उत्पन्न होती है । धार्मिक शिक्षा देने से आध्यात्म पक्ष सबल होता है । धार्मिक शिक्षा से ही सभ्यता को विनष्ट होने से बचाया जा सकता है । धार्मिक शिक्षा से छात्रों में विश्व समानता, विश्व कल्याण और विश्व प्रेम की भावनाओं को सरलता से पैदा किया जा सकता है ।

नैतिक और धार्मिक शिक्षा के द्वारा छात्रों में सदाचार, ईमानदारी, सत्य की खोज, उत्तरदायित्व की भावना, उत्तम आदर्शों की प्राप्ति, जीवन दर्शन का निमार्ण, आध्यात्मिक मूल्यों की अभिव्यक्ति आदि गुणों और आदतों का विकास किया जा सकता है । चरित्र के

1- 'रिर्पोट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 66

विकास में नैतिक और धार्मिक शिक्षा महत्वपूर्ण योग देती है । महान गुण जैसे वफादारी, साहस अनुशासन और आत्म त्याग जैसे गुण एक नागरिक के लिये आवश्यक है ।[1]

राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य हमारी राष्ट्रीय संस्कृति का पोषण और आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार उसका पुनः निर्माण करना है । शिक्षा का यह कार्य क्यों और किस प्रकार किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में जेन्टाईल का कहना है कि राष्ट्रीय संस्कृतियां मानव मस्तिष्क की उच्चतम आवश्यकताओं के प्रति इतनी सजग कभी नहीं थी जितनी की अब हैं । ये आवश्यकताएं केवल सौन्दर्यात्मक और अमूर्त, बौद्धिक आवश्यकताएं ही नहीं है वरन् नैतिक व धार्मिक भी है । जिस विद्यालय में नैतिक व धार्मिक शिक्षा का समावेश नहीं है वह विद्यालय निरर्थक हैं ।

सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् उन्नत मूल्य समझे जाते हैं । हम केवल धर्म और नैतिकता के माध्यम से ही खोज कर उसे प्राप्त करके अपने जीवन को पूर्ण बना सकते हैं। अतः शिक्षा में धर्म और नैतिकता को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना आवश्यक है । राधाकृष्णन इस बात पर बल देते हैं कि छात्रों में उचित मूल्यों का समावेश करने पर बल दिया जाना चाहिये ।

आज हमारी शिक्षा और सामाजिक जगत में जो दोष दृष्टिगोचर होते हैं उनका कारण धार्मिक विचारों का अभाव है । जो प्राचीन विचार हमें बांधे हुये थे वे समाप्त

1- 'रिर्पोट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली , 1950, पृष्ठ 299

हो रहे हैं और जिन नये विचारों को हम अनजाने स्वीकार कर रहे हैं उससे स्थिति और खराब हो रही है । इसको सुधारने के लिये एकमात्र साधन नैतिक और धार्मिक शिक्षा ही प्रतीत होती है, इसके अभाव में हम आत्म विहीन हो रहे हैं । हमारे राष्ट्र का भविष्य वही होगा जिसे हमारी शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन कर रहे छात्र बनायेगें । हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हम अपने शिक्षालयों में कैसी शिक्षा देते हैं । नये भारत के निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि अपने छात्र-छात्राओं को नैतिक व धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाये ।

राधाकृष्णन के अनुसार हमारा देश एक धर्म निरपेक्ष राज्य है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह धर्म की अवहेलना करता है । हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक संकीर्णता से मुक्त होकर अपने धर्म के अनुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता है । संविधान में सब धर्मों के लिये समान अवसर प्रदान किया गया है। राज्य का विश्वास किसी भी धर्म में नहीं है । राज्य को किसी भी धर्म का पक्ष नहीं लेना है । सभी धर्मों को समान स्थान प्राप्त है यदि वे समाज में बुराईयां न फैलायें ।[1] ऐसे धर्म - निरपेक्ष राज्य का अर्थ धार्मिक अज्ञानता नहीं है ।

राधाकृष्णन ने धर्म निरपेक्ष भारत के लिये नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दुओं पर बल दिया -

---

1- 'रिर्पोट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 300

8.8.1 मौन चिन्तन:

मौन चिन्तन विद्यालय का अभिन्न अंग होना चाहिये । प्रत्येक शिक्षा संस्था में दैनिक कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ समय के लिये मौन और शान्त चिन्तन की व्यवस्था होनी चाहिये, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आत्म दर्शन करने का प्रयत्न करें, क्योंकि व्यक्ति एक आत्मा है और शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को इस सत्य के प्रति जागरूक करना है जिससे कि वह अपनी आत्मा को पहचान सके और अन्तर्आत्मा के प्रकाश में वह अपने जीवन कार्यों को समुचित रूप से ढ़ाल सके । इस मौन चिन्तन के द्वारा कुछ क्षणों के लिये हम अपने मस्तिष्क सांसारिक समस्याओं से अलग करके उन शक्तियों की ओर लगा सकते हैं जो जीवन के अर्थ और मूल्यों को निश्चित करती है । हम जगत की सर्वोच्च सत्ता के विषय में तभी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जब हम अपने अन्तस को जाने । मानव आत्मा ईश्वर की वृत्रिका : मोमबत्ती : है । शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को इस सत्य से अवगत कराना है कि व्यक्ति एक आत्मा है और उसे इसे अपने अन्दर ढूंढना है और अपने जीवन और कार्यों को आन्तरिक आत्मा की शक्ति और प्रकाश में सम्पादित करना है ।[1]

8.8.2 महान पुस्तकों का अध्ययन :

विद्यार्थियों को धार्मिक पुस्तकों के माध्यम से नैतिक और धार्मिक बनाने का विचार प्रभावशाली नहीं है । बौद्धिक अनुदेशन से हृदय परिवर्तन संभव नहीं है । यद्यपि

1- 'रिर्पोट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49; भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 300

विचारों का प्रभाव जीवन पर पड़ता है लेकिन इससे इस बात का भय है कि हमारा नैतिक और आध्यात्मिक चिन्तन यान्त्रिक न हो जाये । विद्यार्थियों के मस्तिष्क में मूल्यों को हम शक्ति के द्वारा नहीं थोप सकते, वरन् सुझाव देकर और समझाकर ही उनका विकास कर सकते हैं । इसकी सबसे उत्तम विधि व्यक्तिगत उदाहरण, नैतिक जीवन और दिन प्रतिदिन पढ़ने वाली पुस्तकों तथा किये जाने वाले कार्य हैं । प्रारम्भिक स्तर पर ये पुस्तकें नैतिक पाठ न पढ़ाकर महापुरूषों की जीवन गाथाएं और जीवन चरित्र को बताये जो मानव हित के लिये महत्वपूर्ण हैं । ऐसी पुस्तकों को सुन्दरता, कोमलता और सद्गुणों से युक्त होना चाहिये । ऐसी पुस्तकें संकुचित दृष्टिकोण को नष्ट करती हैं, भय को मिटाती हैं और हमारे अन्दर आशा का संचार करती हैं, संवेदनाओं को जागृत करती हैं और अच्छी आदतों का विकास करती हैं । माध्यमिक स्तर पर ऐसी कहानियां बताई जानी चाहियें, जिनमें महान नैतिक और धार्मिक सिद्धान्त छिपे हुये हो और ऐसे विचार, घटनायें और महापुरूषों के विषय में अध्ययन कराया जाना चाहिये, जिन्होंने महान धार्मिक आन्दोलनों को चलाया । [1]

8.8.3 धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन:

विभिन्न धर्मों में समन्वय स्थापित करने के लिये सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन आवश्यक है । भगवत गीता, धम्मपद, ओल्ड टेस्टामैन्ट, जेन्डा, अवेस्ता,

---

1- 'रिर्पोट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950 पृष्ठ 30।

कुरान, गुरूग्रन्थ साहिब आदि धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया जाना चाहिये । जिससे विद्यार्थियों को विभिन्न धर्मों के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त हो सके और वे धर्म के सच्चे अर्थ को समझ सकें । ऐसी पुस्तकें नहीं पढ़ाई जानी चाहिये जो यह बताये कि केवल उनका धर्म ही सच्चा धर्म है । हमारी शिक्षा को सच्चे धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करनी चाहिये और यह आशा पैदा करनी चाहिये कि मानव जाति विकास की और अग्रसर हो सके ।[1]

8.8.4 धर्म दर्शन:

जब विद्यार्थी महान आत्माओं के महान विचारों से परिचित हो जाये तब उनको धर्म दर्शन की समस्याओं से अवगत कराया जाना चाहिये, आधुनिक वैज्ञानिक युग में हमारे विचार मस्तिष्क को सन्तुष्ट करने वाले होने चाहिये । अतीत में महान चिन्तकों ने अपनी पीढ़ी के लिये जो कार्य किया, हमें भी अपनी पीढ़ी के लिये वही कार्य करना चाहिये । हमें उन बौद्धिक सन्देहों को समझना चाहिये जिनकी और आधुनिक जगत उन्मुख हैं और उन विचारों को प्रतिपादित करना चाहिये जो जगत के अर्थ और प्रकृति के सम्बन्ध में हैं ।[2]

8.9 राधाकृष्णन के अनुसार विभिन्न स्तरों पर धार्मिक शिक्षा :

राधाकृष्णन ने विभिन्न स्तरों पर नैतिक और धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये–

1- 'रिपोर्ट ऑफ दी यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन,' 1948-49, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1950, पृष्ठ 302

2-वही, पृष्ठ 302

8.9.1 विद्यालय स्तर पर :

1- छात्रों को श्रेष्ठ नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों को व्यक्त करने वाली कहानियां पढ़ाई जानी चाहियें ।

2- छात्रों को महान व्यक्तियों की जीवनियां पढ़ाई जानी चाहियें ।

3- जीवनियों में महान व्यक्तियों के उच्च विचारों और श्रेष्ठ भावनाओं का समावेश किया जाना चाहिये ।

4- महापुरूषों की कहानियां और जीवनियां श्रद्धा और सुन्दरता से लिखी जानी चाहियें ।

8.9.2 विश्वविद्यालय स्तर पर:

1- स्नातक वर्ष के प्रथम वर्ष में विश्व के महान धार्मिक गुरू जैसे महात्मा बुद्ध, कन्फयूसियस, जोरास्टर, सुकरात, ईसा, शंकर, रामानुज, माधव, मौहम्मद, कबीर, नानक, गाँधी आदि महान धार्मिक नेताओं की आत्म कथायें और जीवन चरित्र पढ़ाये जाने चाहियें ।

2- स्नातक वर्ष के द्वितीय वर्ष में विश्व के विख्यात धार्मिक ग्रन्थों के वे अंश पढ़ाये जाने चाहिये जो सभी धर्मों में समान हो ।

3- स्नातक स्तर के तृतीय वर्ष में धर्म दर्शन के मूलभूत तत्वों का अध्ययन कराया जाना चाहिये ।